संविदा और प्रस्थापना (Contract and Proposal)

संविदा विधि को भली भाँति समझने के लिए हमें संविदा विधि का महत्व और उसकी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि की जानकारी होना आवश्यक है। इसलिये हम यहां इन दोनों बिन्दुओं पर संक्षिप्त में विचार करेंगे।

संविदा विधि का महत्व (Importance of the Law of Contract)

प्रत्येक व्यक्ति अपने दैनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये

कुछ ऐसी संविदायें करते हैं जिनका उन्हें भान भी नहीं हो पाता है कि उन्होंने कोई संविदा की है। उदाहरणार्थ–जब हम कोई वस्तु खरीदते है, अथवा जब हम कोई वस्तु उधार देते हैं, अथवा जब हम किसी बस या टैक्सी या रेलगाडी आदि में सवारी करते हैं, अथवा अपने दैनिक जीवन में इसी प्रकार के अन्य कार्य जैसे कपड़ा सिलाई हेतु टेलर को देते है या घड़ी सुधारक को घड़ी रिपेयरिंग के लिये देते है या जानवरों को रखवाली के लिये सौंपना आदि, तब हम निश्चित रूप से संविदा करते है। इस प्रकार की संविदा अभिव्यक्त या विवक्षित हो सकती है। किन्तु सामान्य व्यक्ति को इस बात का आभास नहीं होता है कि विधि की दृष्टि में वह क्या कर रहा है, केवल व्यापारी वर्ग ही संविदा सम्बन्धी विधि की ओर किंचित ध्यान देते हैं क्योंकि प्राय: उनका सम्पूर्ण व्यापार और अधिकांश वाणिज्यिक संव्यवहार संविदा पर ही आधारित होते हैं। अतः इस प्रकार के सभी संव्यवहारों से, चाहे वे सामान्य जन या व्यापारी जन से सम्बन्धित हो, उनका विश्लेषण करने पर विदित होता है कि क्या वे ऐसे पारस्परिक करारों पर आधारित हैं जिनसे परस्पर अधिकार और दायित्वों की उत्पत्ति होती है।

भारतीय संविधा विधि की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि (Hirtorical back ground of Indian Contract Act) :

सन् 1872 से पूर्व ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा इस देश में स्थापित कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई के प्रेसी डेन्सी नगरों में अथवा उनके पास मुफस्सिल में निवास करने वाले व्यक्तियों के मध्य हुई सविदाओं से सम्बन्धित विवादों को निर्णीत करने के लिए एक समान रूप से लागू होने वाला कोई संविदा विधि (Law of contract) उपलब्ध नहीं थी। प्रेसीडेन्सियों में तो न्यायालय ऐसे विवादों का निपटारा करने के लिये आंग्ल विधि की संविदा विधि को कुछ संशोधनों के साथ लागू किया गया, वहां दूसरी ओर मुफस्सिल न्यायालय न्याय, साम्य एवं सद्विवेक (Justice, equity and Good Conscience) के सिद्धान्त के अनुसार संविदा सम्बन्धी मामलों को निर्णीत किया करती थी।

सन् 1781 में स्थानीय निवासियों के लिये यह व्यवस्था की गई कि संविदा संम्बन्धी वादों का निर्णय हिन्दुओं के मामलों में हिन्दू विधि एवं प्रथाओं के तथा मुसलमानों के मामलों में मुस्लिम विधि के अनुसार निर्णय होगा। किन्तु ऐसी अवस्था में जहाँ पर एक पक्षकार हिन्दू व दूसरा पक्ष-

कार मुसलमान हो तो निर्णय का आधार प्रतिवादी की वैयक्तिक विधि होती थी। इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में विधि की एकरूपता (unilo mity) असंतोषजनक स्थिति में थी। अतः पूरे देश की विधि प्रणाली में एकरूपता लाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसे कार्यान्वित रूप में परिणीत करने के लिये तृतीय विधि आयोग (Third Law Commission) ने सन् 1866 की द्वितीय रिपोर्ट में संविदा विधि का एक प्रारूप (Draft) प्रस्तुत किया जो 1872 में प्रकाशित किया गया, किन्तु कतिपय संशोधनों के बाद इसे 25 अप्रेल, 1872 का ब्रिटिश इण्डिया के गवंनर जनरल-इन-काउँसिल के हस्ताक्षर द्वारा इसे अधिनियम का रूप दिया गया जो 1 सितम्बर, 1872 ई० से प्रभावकारी हुआ।

यह अधिनियम "भारतीय संविदा अधिनियम, 1872" कहलायेगा एवं अधिनियम जम्मू व कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर समान रूप से लागू होता है।

संविदा की परिभाषा :

भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 2 (ज) में संविदा की जो परिभाषा दी गई है उसका विश्लेषण करने के पूर्व हम विभिन्न विधि वेताओं के द्वारा जो परिभाषा दी है उनमें से कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं का यहां उल्लेख करना विषय के अध्ययन की दृष्टि से श्रेयस्कर समझते हैं—

1. **सर जॉन सामण्ड** (Sir Johan Salmond) के अनुसार "संविदा एक ऐसा करार है जो पक्षों के बीच आभार उत्पन्न करता है एवं उसकी व्याख्या करता है। संविदा विधि न तो पूर्ण रूपेण करार विधि है और न ही तो आभार विधि, बल्कि वह करार विधि जो आभार उत्पन्न करती है।" (Contract is an agreement, Creiting and defining abligations between the parties. The law of Contract is not whole law of agreement nor it is whole law of obligation, but it is law of those agreement which creates obligation) इस परिभाषा के अनुसार आभार की उत्पत्ति करने वाला करार ही संविदा का रूप ले सकता है। अतः इसमें आभार पर अधिक जोर दिया गया है।

2. पोलक (Pollock) के अनुसार, "प्रत्येक करार या वचन जो विधि प्रवर्तनीय हो संविदा कहलाता है।" (Every agreement and promise enforceable by law is a Contract)

3. सेविनी (Savigny) के अनुसार, "संविदा बहुत से व्यक्तियों का संघ है जो उनकी इच्छाओं के अनुसार बनाया जाता है जिसका ध्येय एक दूसरे के प्रति आभार उत्पन्न करना होता है।" (Contract is union of several in an accordant expression of will with object of creating an obligation with each other).

4. सर विलियम एन्सन (Sir Willam Anson) के अनुसार, "संविदा दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच एक ऐसा करार है जो कि विधि द्वारा प्रवर्तनीय है जिसमें एक या अधिक व्यक्तियों द्वारा एक या अधिक व्यक्तियों के प्रति कार्य या प्रविरत रहने का अधिकार अर्जित होता है।" (A contract is an agreement enfroceable by law made between two or more persons by which right are acquired by one or more, to act or for bearance on the part of other or others,) दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि जब किसी करार से कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को कोई कार्य करने या कोई कार्य न करने के लिए विवश करने में समर्थ होता है, तो उसे संविदा कहा जाता है। उदाहरणार्थ–

यदि 'क' और 'ख' के बीच इस बात का करार हो कि 'क' 'ख' के लिये कुछ कपडे बनाएगा और 'ख' उसे 500 रु. देगा तो, यह करार एक संविदा होगी क्योंकि करार के कारण 'ख' को एक कार्य किये जाने का अधिकार प्राप्त है अर्थात् 'क' द्वारा कपड़े बनाए जाने का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार 'क' और 'ख' में इस बात का करार है कि 'क' एक नीलाम में बोली नहीं लगायेगा तो 'ख: उसे 1000 रु. देगा, जिसे 'क' स्वीकार करता है। यह करार भी संविदा है क्योंकि करार के ही कारण 'ख' को प्रविरत रहने (forbearance) का अधिकार है अर्थात् 'क' द्वारा नीलाम में बोली न लगाने के प्रविरत रहना। इस प्रकार यदि कोई करार किसी व्यक्ति को यह अधिकार देता है कि वह किसी दूसरे व्यक्ति को कोई कार्य करने या करने से विरत रहने के लिये विवश कर सकता है, तो उसे संविदा कहा जाता है।

5. लीक (Leake) के अनुसार, "संविदा वैध संविदा होने के उद्देश्य से एक ऐसा करार है जिसके द्वारा एक पक्षकार कुछ कार्य करने के लिये आबद्ध होगा और जिसकी प्रवर्तनीय कराने का

दूसरे पक्षकार को विधिक अधिकार होगा।" An agreement as the source of a legal Contract imports that one party shall be bound to same performance, which the other have a legal right toeenforce).

6. अमेरिकन रि-स्टेटमेन्ट आफ लॉ आफ कण्ट्रेक्ट के अनुसार, "वचन या वचनों का समूह जिसके उल्लघंन के फलस्वरूप उपचार मिलता है अथवा जिसके पालन से कर्त्तव्य अभिज्ञात होना है।" (Promise or set of Promises, for the breach of which law gives semedy, or the performance of which law in same way recognises as duty).

7, संविदा अधिनियम की धारा 2 (ज) के अनुसार, "वह करार, जो विधित: प्रवर्तनीय हो, संविदा है।" (An agreement enforceable by law is a contıact), इस परिभाषा के अनुसार संविदा के दो आवश्यक तत्व हैं--

(i) करार

(ii) करार विधि द्वारा प्रवर्तनीय होना चाहिये।

पहले हमें 'करार' (agreement) शब्द का अर्थ समझना चाहिए। धारा 2 (ङ) के अनुसार "प्रत्येक वचन या ऐसे वचन को जो एक दूसरे के लिये प्रतिफल हो, करार कहते हैं।" अब प्रश्न उठता है कि 'वचन' किसे कहते हैं। 'वचन' शब्द को धारा 2 (ख) में परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है: "जब किसी स्थापना को प्रतिगृहीत कर लिया जाता है तो वह वचन बन जाता है।" दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि जैसे ही, किसी प्रस्थापना को प्रतिग्रहण प्राप्त हो जाता है वैसे ही यह वचन बन जाता है और यही वचन करार का रूप धारण कर लेता है, जब यह करार विधि द्वारा प्रवर्तनीय होता है तभी संविदा कहलाता है। इस प्रकार संविदा का दूसरा जो आवश्यक तत्व है वह यह है कि ऐसा करार जिसका पालन विधि द्वारा कराया जा सकता है, तभी वह संविदा होगा। ऐसे कौन से करार हैं जिनका विधि द्वारा पालन कराया जा सकता है, इस बारे में शर्तें धारा 10 के अन्तर्गत बतायी गई है। धारा 10 के अनुसार "ऐसे करार को संविदा कहते हैं जो संविदा करने के लिए सक्षम पक्षकारों की स्वतन्त्र सम्मति से किसी विधिपूर्ण प्रतिफल के लिये और किसी विधिपूर्ण उद्देश्य से किये गये है और एतद् द्वारा स्पष्ट रूप से शून्य घोषित नहीं किये गये है।" इसके अतिरिक्त यदि भारत में प्रचलित किसी विधि द्वारा संविदा का लिखित रूप में अथवा

साक्षियों की उपस्थिति में किया जाना हो, या उसका पंजीकृत होना अपेक्षित हो तो वैसा भी होना चाहिए ।

प्रत्येक संविदा करार होता है किन्तु प्रत्येक करार संविदा नहीं होता (All contracts are agreements but all agreements are not contract) अर्थात् प्रत्येक संविदा में करार का होना आवश्यक है बिना करार के संविदा नहीं बन सकता जब कि सभी करार संविदा का रूप धारण नहीं कर सकते है । केवल ऐसे करार संविदा का रूप ले सकते है जो धारा 10 द्वारा बताई गई निम्न-लिखित शर्तें पूरी करें—

(1) करार में विधिपूर्ण प्रतिफल होना चाहिए;

(2) पक्षकार संविदा करने में सक्षम होना चाहिए;

(3) पक्षकारों की सम्मति स्वतन्त्र होनी चाहिए;

(4) करार का उद्देश्य विधिपूर्ण होना चाहिए;

(5) करार स्पष्ट रूप से शून्य घोषित नहीं होने चाहिये ।

जिन करारों में उपरोक्त शर्तें हैं, तो वे करार संविदा का रूप धारण कर लेंगे अन्यथा शेष करार-करार की श्रेणी में रह जायेंगे और वे कभी भी उक्त लक्षणों के अभाव में संविदा नहीं बन सकते है

वैध संविदा के आवश्यक तत्व

(Essential Indigradients of a valid Contract)

प्रत्येक वैध संविदा में निम्नलिखित आवश्यक तत्व पाये जाते हैं—

(1) प्रस्थापना या प्रस्ताव (Proposal or offer)

(2) प्रतिग्रहण (Acceptance);

(3) प्रतिफल (Consideration);

(4) पक्षकारों में संविदा करने की क्षमता;

(5) स्वतन्त्र सम्मति (Free Consent);

(6) विधिपूर्ण उद्देश्य का होना एवं स्पष्ट रूप से शून्य घोषित नहीं हो,

(7) करार का लिखित होना, अथवा साक्षी द्वारा प्रमाणित होना एवं पंजीकृत होना, यदि किसी विशेष विधि द्वारा ऐसा होना अपेक्षित हो ।

वैध संविदा के लिए उपरोक्त प्रत्येक आवश्यक तत्व का विस्तृत वर्णन पृथक-पृथक अध्याय में किया जावेगा। इस अध्याय में प्रस्थापना (Proposal) का वर्णन करने के पूर्व हम संविदा के वर्गीकरण के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेना श्रेयस्कर समझते हैं क्योंकि संविदा विधि के अध्ययन में इनका यथास्थान प्रयोग किया गया है।

संविदा का वर्गीकरण
(Classification of Contract)

भारतीय विधि के अन्तर्गत संविदायें निम्न प्रकार की होती है--

(1) **अभिव्यक्त संविदा** (Eypress Contract)--अभिव्यक्त संविदा से तात्पर्य है कि जब संविदा की शर्तें लिखित या मौखिक शब्दों द्वारा की जाती है तो उसे अभिव्यक्त सविदा कहते हैं। अतः अभिव्यक्त संविदा वह संविदा है जिसमें प्रस्थापना या उसका प्रतिग्रहण शब्दों द्वारा (लिखित या मौखिक) अभिव्यक्त किया गया हो, उदाहरणार्थ–'क' अपनी साईकल 'ख' को 500 रु. में बेचने के लिए प्रस्थापन करता है। 'ख' इस प्रस्थापना को शब्दों द्वारा लिखित या मौखिक रूप में प्रतिग्रहण करले, तो इसे हम अभिव्यक्त संविदा कहेंगे।

(2) **विवक्षित संविदा** (Implied contract)--विवक्षित संविदा से तात्पर्य है कि जब संविदा की शर्ते लिखित या मौखिक शब्दों द्वारा प्रकट न की जाकर अन्यथा पक्षकारों के आचरण से प्रकट होती है, उसे विवक्षित संविदा कहते हैं, उदाहरणार्थ–जब कोई व्यक्ति बस या टेम्सों को अपने हाथ से इशारा देकर रुकवाकर उसमें बैठता है तो वह व्यक्ति विवक्षित रुप से किराया देना स्वीकार करता है। इसी प्रकार जब 'क', 'ख' की घड़ी को 500 रु. में खरीदने को प्रस्थापना करे और 'ख' इस प्रस्थापना का प्रतिग्रहण अपनी घड़ी को 'क' के पास बिना कुछ बोले या लिखे केवल उसे भेज-कर देता है तो इस प्रकार से जिस संविदा का सृजन हुआ उसे विवक्षित संविदा कहेंगे।

(3) **अप्रवर्तनीय संविदा** (Unefiorceable contract)–अप्रवर्तनीय संविदा से तात्पर्य यह है कि ऐसी संविदा जो विधिमान्य होते हुए भी उसमें कतिपय तकनीकी त्रुटियां (Technical defe-cts) होने के कारण लागू नहीं कराई जा सकती है तथा पक्षकार उसके आधार पर भी वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता क्योंकि वह प्रमाणित करने में सक्षम नहीं होती, उसे अप्रवर्तनीय संविदा कहते हैं। उदाहरणार्थ--संलेख (Document) का परिसामा अधिनियम (Limitation Act) के अनुसार

अवधि व्यतीत हो जाना, स्टाम्प अधिनियम के अनुसार पर्याप्त स्टाम्प का न होना याने अपर्याप्त स्टाम्प होना पंजीकरण अधिनियम के अनुसार पंजीकृत न होना आदि। भारत में ऐसी संविदाओं को शून्य संविदा कहा जाता है जबकि आंग्ल विधि में ऐसी संविदा को 'अप्रवर्तनीय संविदा' की संज्ञा दी गई है।

(4) एक पक्षीय तथा द्विपक्षीय संविदा (Unilateral and Bileteral contract)—जिस संविदा में प्रतिफल निष्पादित होता है या जिसमें केवल एक पक्षकार ही वचन देता है या जिसमें एक पक्षकार की ओर से वचन या प्रतिफल का पालन हो जाता है तथा दूसरे पक्षकार को ही अपने वचन या प्रतिफल का पालन करना शेष रहता है तो ऐसे संविदा को एक पक्षीय संविदा कहते हैं।

द्विपक्षीय संविदा में प्रतिफल निष्पाद्य होता है या जिसमें दोनों पक्षकारों द्वारा वचन दिये जाते हैं या जिसमें दोनों ही पक्षकारों को अपने अपने वचन या प्रतिफल का पालन करना शेष रहता है तथा प्रत्येक पक्षकार का वचन दूसरे पक्षकार के वचन का प्रतिफल होता है। इसमें दोनों पक्षकारों का दायित्व रहता है।

एक पक्षीय संविदा का उदाहरण हम माल उधार बेचने के संविदा में देख सकते हैं या फिर दान देने के वचन में देख सकते हैं। जबकि द्विपक्षीय संविदा का उदाहरण हम माल बेचने के करार (Agreement to sell) में देख सकते हैं जिसमें दोनों ही पक्षकारों को अपने अपने वचनों का पालन भविष्य में किसी दिन करना हो।

(5) निष्पादित तथा निष्पाद्य संविदा (Exeuted and Fxecutory contraet)—प्रत्येक संविदा के अन्तर्गत वचनों का पालन ही मुख्य आधार होता हैं जिसके लिए पक्षकार बाध्य होते हैं क्योंकि संविदा से दोनों पक्षकारों के पारस्परिक अधिकार और दायित्व उत्पन्न होते हैं। यदि संविदा के अन्तर्गत वचनों का पूर्णतया पालन कर दिया गया है अथवा एक पक्षकार द्वारा पूर्णतया पालन किया गया संविदा निष्पादित संविदा कहलाता है, उदाहरणार्थ—'क', 'ख' को अपनी एक मोटर साईकल 10,000 रुपये में विक्रय करने की प्रस्थापना (प्रस्ताव) करता है। 'क', 'ख' को मोटर साईकल दे देता है और 'ख' 10,000 रुपये का संदाय उसी समय कर देता है तो यह निष्पादित संविदा है।

किन्तु जिस संविदा में दोनों पक्षकारों में से किसी भी पक्षकार के द्वारा अपने दायित्व का पालन नहीं किया जाता है अथवा दोनों ही पक्षकारों की ओर से पालन करने के लिए कुछ कार्य किया जाना शेष रह जाता है और जिसका पालन भविष्य में किया जायेगा, उसे निष्पाद्य संविदा कहते है। उदाहरणार्थ-'क' नामक व्यक्ति 'ख' नामक व्यक्ति को 1000 रुपये प्रतिमाह देने का वचन इस शर्त पर देता है कि अगली पहली तारीख से वह उसके यहां नौकरी करले तो वह संविदा निष्पाद्य संविदा कहलायगी क्योंकि दोनों पक्षकारों की ओर से कुछ किया जाना शेष है।

मकान के विक्रय में यदि विक्रेता बयाना (earnest) के रूप में विक्रय मूल्य में से कुछ राशि प्राप्त करके मकान का अधिपत्य क्रेता को देता है, किन्तु अभि विक्रेता ने विक्रय-बिलेख (Sale-deed) नहीं लिखा है तो यह उदाहरण भी निष्पाद्य संविदा के ही अन्तर्गत आता है क्योंकि इसमें दोनों पक्षकारों की ओर कुछ न कुछ किया जाना शेष रहता है।

(6) **आन्वयिक संविदा** (Constructive Contract)–आन्वयिक संविदा से तात्पर्य उस संविदा से है जिसमें किसी पक्षकार की ओर से संविदा करने का आशय नहीं होता किन्तु विधि उनके बीच संविदा की उपधारणा करती है, उदाहरणार्थ-खोये हुए माल के पाने वाले पर दायित्व होता है कि वह उसके वास्तविक स्वामी का पता लगाकर उसे वह माल वापस करें। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति किसी के मकान पर कोई माल भूल जाय और मकान मालिक उस माल को अपने पास रख ले तो उसका माल के स्वामी के प्रति यह दायित्व उत्पन्न होता है कि वह उसका मूल्य संदाय करे अथवा उसे माल वापस करें।

(7) **शून्य संविदा** (Void contract)—धारा 2 (ञ) के अनुसार "जिस संविदा का विधि द्वारा प्रवर्तनीय कराये जाने का गुण समाप्त हो जाता हैं, उसे विधि द्वारा प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता, वह शून्य संविदा कहलाता है।" [A contract which ceases to be enfocceable by law becomes void when it ceases to be enforceble–Stc. 2(J)] दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि जब कोई भी संबिदा विधि द्वारा प्रवर्तनीय नहीं रहती है तब उसकी प्रवर्तनीयता समाप्त होते ही वह शून्य संविदा हो जाती है। शून्य संविदा निष्प्रभाव होती है अर्थात उसका कोई विधिक प्रभाव नहीं होता है। इससे पक्षकारों के बीच कोई आभार व अधिकार उत्पन्न

नहीं होता है। वस्तुतः शून्य संविदायें शून्य करार होती है, चूंकि विधि द्वारा अप्रवर्तनीय करार संविदा का रूप धारण नहीं कर सकता। केवल प्रवर्तनीय करार ही संविदा हो सकता है। भारतीय संविदा अधिनियम के अन्तर्गत ऐसे करार है, जिन्हें नैतिकता, विधि या लोकनीति के प्रतिकूल होने के कारण तथा कारण तथा दोनों पक्षकारों की भूल से किये गए करार विधि द्वारा शून्य घोषित किये गये हैं।

(5) **शून्यकरणीय संविदा** (Voidable Contract)—धारा 2 (झ) के अनुसार "कोई भी करार. जो कि उसके पक्षकारों में से एक या अधिक के विकल्प (Option) पर प्रवर्तनीय है, किन्तु जो दूसरे पक्षकार या दूसरे पक्षकारों के विकल्प पर प्रवर्तनीय नहीं हैं, वह शून्यकरणीय संविदा हैं" – (An agreement which is enforceable by law at the option of one or more of the paities thereto, but not at the other or others, is avoidable contract—Sec 2 (i))

इस प्रकार के करार उस समय तक पूर्णतः वैंध तथा विधि द्वारा प्रवर्तनीय होते हैं, जब तक कि उसे निराकृत करने के लिए व्यथित (aggrieved) पक्षकार अपने विकल्प का प्रयोग करके उसका परित्याग न कर दे। ज्यों ही व्यथीत पक्षकार अपने विकल्प का प्रयोग करके उसे शून्य घोषित करवा देता है त्यों ही उसका विधिक प्रभाव समाप्त हो जाता है और वह शून्य संविदा का रूप धारण कर लेता है। समस्त शून्यकरणीय करार दोनों पक्षकारों में से एक पक्षकार के विकल्प पर प्रवर्तनीय होते हैं, दूसरे पक्षकार के विकल्प पर नहीं। वे सभी करार जो प्रपीड़न, असम्यक् असर, कपट या दुव्यपदेशन से किये जाते हैं, उस पक्षकार की इच्छा पर शून्यकरणीय होते है जिसका प्रतिग्रहण (acceptance) इस प्रकार से प्राप्त किया गया है। वे परिस्थितियां जिनमें करार शून्यकरणीय हो जाता है, 14 19, 19क, 53 एवं 55 के अन्तर्गत बतायी गई है।

शून्य तथा शून्यकरणीय संविदाओं में अन्तर (Distinction between void and voidable contracts)—

(i) **वैधता की अवधि**—

शून्य संविदायें एक बार उस प्रकृति की होने जाने पर स्वयं ही स्थायी रूप से अन्त तक शून्य हो जाती है जबकि शून्यकरणीय संविदायें उसके एक अधिकृत पक्षकार के विकल्प पर अप्रवर्तनीय

ठहरा दिये जाने के विकल्प के प्रयोग कर लेने पर ही शून्य बनती है अन्यथा उसके इस विकल्प के प्रयोग न करने की अवस्था में वे अन्त तक पूर्णतः वैध बनी रहती है ।

(ii) **आधार :**

सामान्यतया संविदायें शून्य तभी होती है जब वे अनैतिक, लोक-नीति के विरुद्ध, बिना प्रतिफल के, किसी अवयस्क द्वारा या किसी असम्भव कार्य को करने के लिए या दोनों पक्षकारों की भूल से की गई हो ।

जब कि कोई भी संविदा तब शून्यकरण हो सकता है, जब व प्रपीडन, असम्यक् असर कपट या दुर्व्यपदेशन द्वारा किया गया हो ।

(iii) **प्रभाव :**

शून्य संविदायें प्रभावहीन होती हैं क्योंकि उसका कोई विधिक महत्व नहीं होता । जबकि शून्यकरणीय संविदायें त्रुटिपूर्ण होती है । इसमें एक पक्षकार यदि चाहे तो उसका लाभ उठाकर अमान्य करा सकता है । शून्यकरणीय संविदा यदि व्यथित पक्षकार द्वारा अमान्य न कराई जाय तो वह वैध तथा विधिक प्रभावयुक्त होती है ।

(iv) **अधिकार का अन्तरण :**

शून्य संविदा के मान्य वैधानिक अस्तित्व के अभाव के कारण एक तृतीय बाह्य व्यक्ति को अन्तरण (Transfer) द्वारा कोई मान्य अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता, जबकि शून्यकरणीय संविदा के अन्तर्गत तृतीय बाह्य व्यक्ति को अच्छा अधिकार मिल सकता है, यदि उसने मूल्य संदाय कर माल को सद्भावना से व्यथित पक्षकार द्वारा संविदा को शून्य घोषित करने के विकल्प के प्रयोग करने के पहले प्राप्त कर लिया हो ।

(v) **मान्यता :**

शून्य संविदा को न्यायालय द्वारा मान्यता नहीं मिलती, जबकि शून्यकरणीय संविदाओं में में व्यथित पक्षकार के विकल्प पर विधि द्वारा मान्यता प्राप्त की जा सकती हैं ।

(9) अवैध या विधि विरुध संविदा (Illegal or unlawful contract) :

कोई भी ऐसी संविदा जिसका उद्देश्य या प्रतिफल अवैध या विधि विरुद्ध होता है तो उसे अवैध या विधि-विरुद्ध संविदा कहते हैं । प्रत्येक अवैध संविदा शून्य संविदा होती है, इसलिए इसका विधि द्वारा

प्रवर्तन नहीं कराया जा सकता। किन्तु प्रत्येक शून्य संविदा अवैध नहीं होती है, जब तक कि उसका उद्देश्य या प्रतिफल--

(i) किसी विधि द्वारा वर्जित न हो,

(ii) वह इस प्रकार का न हो कि यदि उसे पूरा करने की अनुमति दे दी जाय तो वह किसी विधि के उपबन्धों को विफल कर दे,

(iii) वह कपटपूर्ण न हो,

(iv) वह किसी दूसरे के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुँचाने वाला न हो,

(v) अनैतिक तथा लोक नीति के विरुद्ध न हो ऐसी परिस्थितियाँ संविदा को अवैध कर देती है।

पंद्यम संविदा (Wagering contract) शून्य होती है किन्तु वे अवैध संविदा नहीं होती। इसके अतिरिक्त अवैध संविदाओं के सांपार्श्विक संव्यवहार (Collateial Transactions) को भी मुख्य संविदा की भाँति ही अवैध माना गया है।

शून्य तथा अवैध संविदा में अन्तर :

(i) **पकता :**

प्रत्येक शून्य संविदा अवैध संविदा नहीं होती है। जैसे असम्भव कार्य करने पर करार या बाजी लगाने का करार शून्य होते हैं, अवैध नहीं। जबकि प्रत्येक अवैध संविदा शून्य संविदा होती है। अतः अवैध शब्द शून्य शब्द से कहीं अधिक संकुचित है।

(ii) **प्रभाव :**

शून्य संविदायें उस क्षण से विधि द्वारा अप्रवर्तनीय होती है। जिस क्षण यह प्रमाणित हो जाय कि वे शून्य संविदायें हैं। अर्थात प्रमाणित होने पर कि वे अनैतिक हैं या लोक-नीति के विरुद्ध है या बिना किसी प्रतिफल के की गई या किसी अवयस्क द्वारा की गई है या दोनों पक्षकारों की भूल से की गई है या बाजी लगाने या असम्भव कार्य को करने से सम्बन्धित है। जबकि अवैध संविदा प्रारम्भ से ही शून्य होने के कारण प्रभावहीन होती है अर्थात अवैध संविदायें प्रारम्भ से ही विधि द्वारा अप्रवर्तनीय मानी जाती है।

(iii) **सांपार्श्विक संव्यवहार :**

शून्य संविदाओं के सांपार्श्विक संव्यवहार (Collteral transaction) पूर्णतया वैध तथा मान्य बने रहते हैं। जैसे बाजी या पण लगाने का करार शून्य करार है। तथा 'क', 'ख' परस्पर बाजी लगाने का संविदा करते हैं और उसमें 'क' हार जाता है। 'क', 'ग' से कहता है कि वह ख के साथ बाजी लगाने की संविदा में 500 रु. हार गया है और यदि 'ग' 'क' को 500 रुपये ऋण दे देता है तो अब 'क' और 'ग' के बीच हुआ यह संव्यवहारक सांपार्श्विक संव्यवहार है तथा इसे न्यायालय द्वारा प्रवर्तित कराया जा सकता है क्योंकि शून्य संविदा का सांपार्श्विक संव्यवहार पूर्णत: वैध और प्रवर्तनीय होता है, जबकि अवैध संविदा के सांपार्श्विक संव्यवहार भी पूर्णतया अवैध होते हैं। जैसे 'क', 'ख' परस्पर यह करार करते हैं कि यदि 'क' 'म' की हत्या कर देगा तो 'ख' 'क' को दस हजार रुपये देगा क म की हत्या कर देता है। ख ग से दस हजार रुपये ऋण यह कह कर लेता है कि उसे यह राशि 'क' को संदाय करनी है क्योंकि उसने 'ख' के कहने से 'म' की हत्या की है। यहां 'क' और 'ख' के बीच हत्या-सम्बन्धी मूल संविदा अवैध है। उसका वही प्रभाव 'ख' और 'ग' के बीच की गई सांपार्श्विक संविदा पर भी होगा अर्थात न तो 'ग' धन-वसूली का दावा कर सकता है और न ही 'क'।

(10) **आरम्भत: शून्य संविदा** Contract Void inito) :

जब कोई संविदा, जो आरम्भ से शून्य होती है, आरम्भत: शून्य संविदा कहलाती है। हालांकि यह कहना कि संविदा आरम्भ से ही शून्व है। एक परस्पर विरोधी (Contradictory) बात है क्योंकि आरम्भ से शून्य संविदा संविदा ही नहीं होती, अपितु विधि द्वारा अप्रवर्तनीय एक करार होती है इसलिए शून्य होती है।

आंग्ल विधि के अन्तर्गत संविदाओं का वर्गीकरण :

आंग्ल विधि के अन्तर्गत संविदायें तीन प्रकार की होती हैं। प्रथम अभिलेख संविधायें (Contract or records) द्वितीय मुद्रांकित संविदायें (Contract Under Sea) तृतीय साधारण संविदायें (Simple Contract)। प्रथम प्रकार के संविदे वे फैसले और मुचकलें हैं जो शीघ्र अमल में लाये जाकर प्रवर्तित किये जाते हैं। इनके अन्तर्गत न्यायालय के फैसले से उस व्यक्ति पर दायित्व लागू किया जाता है। जिनके विरुद्ध निर्णय की रकम अदायगी दर्ज की जाती है। इसमें पक्षकारों का दायित्व किसी मान्य लेख के आधार पर अस्तित्व में आता है। द्वितीय प्रकार के संविदा में किसी

दस्तावेज को लिखकर मुद्रांकित की जाती है। मुद्राँकित कर संविदा को विशिष्ट संविदा भी कहते हैं, इनमें किसी प्रतिफल की आवश्यकता नहीं होती है। तृतीय प्रकार के संविदायें में संविदा मुद्रांकित नहीं होती हैं। इन साधारण संविदाओं का सृजन पक्षकार मौखिक अथवा लिखित रूप से करते हैं तथा इनके लिए मूल्यवान प्रतिफल की आवश्यकता होती है। विधितः कुछ निश्चित साधारण संविदायें लिखित होनी चाहिए।

प्रस्थापना अथवा प्रस्ताव (Proposal or Offer) :

भारतीय संविदा अधिनियम का 'प्रस्थापना' (Proposal) शब्द आंग्ल विधि के 'प्रस्ताव' (Offer) शब्द का समानार्थी है। भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 2]क] में प्रस्थापना की परिभाषा इस प्रकार दी गई है —

"जब एक व्यक्ति, किसी कार्य को करने अथवा उस कार्य के करने से प्रविरत रहने की अपनी रजामन्दी, किसी दूसरे व्यक्ति से, इस आशय से संज्ञापित करता है कि वह दूसरा व्यक्ति उस कार्य को करने या उससे प्रविरत रहने की अपनी अनुमति प्रदान करे तो उसे प्रस्थापना करना कहा जाता है।" साधारण शब्दों में इसका अर्थ है एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति से संविदा करने की इच्छा व्यक्त करना। प्रस्थापना करने वाले व्यक्ति को 'प्रस्थापक' या 'प्रस्ताव कर्त्ता' (Promisor or offeree) तथा जिसे प्रस्थापना की जाती है उसे 'प्रतिग्रहण कर्त्ता' या 'प्रस्तावग्रहीता' (Promisor offeree) कहते हैं।[3]

प्रस्थापना या प्रस्ताव की एक अन्य परिभाषा पोलक महोदय द्वारा भी दी गई जिसके अनुसार "व्यक्त की जाने वाली शर्तें के अनुसार किसी व्यक्ति का किसी करार का पक्षकार होने की स्वीकृति अभिव्यक्त करना ही प्रस्ताव कहलाता है।"

प्रस्थापना की उक्त परिभाषाओं के आधार पर उसके आवश्यक तत्व :

(1) प्रस्थापना में कम से कम दो व्यक्ति होने चाहिए, एक व्यक्ति द्वारा किसी कार्य को करने से प्रविरत रहने (न करने) को रजामन्दी या इच्छा व्यक्त होनी चाहिये।

(2) वह 'इच्छा' किसी अन्य व्यक्ति को व्यक्त की जानी चाहिए न कि स्वयं को। क्योंकि

कोई भी व्यक्ति अपने आपको ही प्रस्थापना (Proposal) नहीं कर सकता अर्थात प्रस्थापना के लिए दो पक्षों का होना आवश्यक है।

(3) इस रजामन्दी या इच्छा का एक मात्र उद्देश्य उस व्यक्ति की अनुमति प्राप्त करना है जिससे ऐसे कार्य के करने या उसके प्रविरत रहने के लिए इच्छा व्यक्त की गई है।

प्रस्थापना या प्रस्ताव के विशेष लक्षण

(Charactersstics of an offer or Proposal) :

(1) प्रस्थापना का उद्देश्य विधिक सम्बन्ध उत्पन्न करना होना चाहिए--जो व्यक्ति प्रस्थापना करता है। उसकी इच्छा उस प्रस्थापना में विधिक सम्बन्ध उत्पन्न करने की होनी चाहिये। यही इच्छा प्रतिग्रहण कर्त्ता की होनी चाहिए, अर्थात प्रस्थापक और प्रतिग्रहणकर्त्ता दोनों ही इस बात से अवगत हो कि यदि सविदा-भंग हो जाय, तो इसके हमको विधिक परिणाम भी भुगतने पड़ेगे। संविदा का उद्देश्य केवल मनोरंजन का विषय नहीं होना चाहिये, बलिक उसमें विधिक सम्बन्ध उत्पन्न करने का उद्देश्य आवश्यक है। जहाँ प्रस्थापना का उद्देश्य विधिक सम्बन्ध उत्पन्न करने का नहीं है, वहाँ चाहे दोनों पक्षों की अनुमति भले ही हो, वह संविदा का रूप धारण नहीं कर सकता है। प्रस्थापना ऐसी हो जो प्रतिग्रहण के पश्चात संविदा में परिवर्तित हो सके। मात्र बात-चीत के दौरान व्यक्त किये गये विचार एवं अभिप्राय प्रस्थापना नहीं हो सकते, चाहे दूसरे ने उसके प्रति उत्तर में कार्य किया हो व आमोद-प्रमोद व सैर सपाटे के विषय हो संविदा का रूप धारण नहीं कर सकते। इसी प्रकार, यदि शब्दो का उच्चारण हँसो-मजाक क्रोध (Jest, Joke Dranger) में किया जाय, तो वे संविदा नहीं बन जायेंगे। उदाहरण के लिए एक दुकान में रखे हुए खिलौने का मूल्य 10 रुपया है, इसे 2 रुपये में दे दो, यह सुनकर दुकानदार मजाक में कहता है कि 1 रुपये में ही ले जाओ इसमें दोनों पक्षों का अभिप्राय विधिक सम्बन्ध उत्पन्न करने का नहीं है, इसलिये यह संविदा नहीं बनता है। इसी प्रकार किसी मित्र या सम्बन्धि को भोजन के लिए निमन्त्रण, सिनेमा देखने साथ-साथ घूमने या क्रिकेट मैच के खेल की प्रस्थापना और प्रतिग्रहण होने पर भी संविदा नहीं बन जाते हैं क्योंकि ऐसे सब मामलों में कोई विधिक परिणाम अभिप्रेत नहीं है अर्थात इससे कानूनी कार्यवाही का आधार नहीं बन सकता है। लार्ड स्टोवेल (Lord Stowell) के अनुसार, "संविदाओं को अवकाश के समय की क्रीड़ा मात्र अथवा मनोरजन का विषय

न होना चाहिये जिसके सम्बन्ध में पक्षकारों का उनके गम्भीर प्रभाव रखने का आशय न हो।"[4]

बैलफर बनाम बैलफर[5] का वाद इस सिद्धान्त का सुप्रसिद्ध उदाहरण है--इस वाद में प्रतिवादी श्रीलंका (सिलोन) में नौकरी करते थे। वह अपनी पत्नी तथा बच्चों के साथ इंगलैंड छुट्टियां व्यतीत करने को गया। जब वे वापस आने लगे उस समय उसकी पत्नी अस्वस्थ्य हो गई, इसी कारण से उसको पत्नी को इंगलैंड में ही ठहरना पड़ा। चलते समय उन्होंने अपनी पत्नी को वचन दिया कि तीस पौंड प्रति माह खर्चे के लिए भेजता रहेगा। कुछ समय के लिये वह इतने पैसे भेजता रहा और फिर मतभेदों के कारण भेजना बन्द कर दिया। बाद में उनका तलाक भी हो गया। पत्नी ने तलाक के समय तक जितना पैसा बनता था उस रकम को प्राप्त करने के लिए न्यायालय में वाद दायर किया। किन्तु पत्नी को इस वाद में सफलता प्राप्त नहीं हुई तथा उसका वाद, न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया।

उक्त वाद में लार्ड एटकीन (Lard Atkin) ने यह सिद्धान्त बनाया,

"पक्षकारों में अनेकों ऐसे करार हुआ करते हैं जो हमारी विधि के अनुसार संविदा का परिणाम नहीं रखते हैं। साधारण उदाहरण है, दो व्यक्तियों द्वारा साथ-साथ घूमने का वचन या भोजन के लिए प्रस्थापना तथा उसकी स्वीकृति। साधारण परिस्थितियों में कोई भी यह नहीं कह सकता है कि ऐसे वचन संविदा बन सकते हैं और करारों में से बहुत प्रचलित करार जो संविदा नहीं बनता, वह है पति-पत्नि के समझौते। ऐसे समझौते संविदा नहीं होते, चाहे उनके लिये कोई प्रतिफल भी क्यों न रहा हो। वे संविदा नहीं हैं क्योंकि पक्षकार ऐसा ही नहीं रखते थे।"[6]

अब प्रश्न इस बात का उठता है कि यह किस प्रकार से पता लगाया जाय कि किस प्रस्थापना से नहीं? विधिक सम्बन्ध उत्पन्न होते हैं तथा किस प्रस्थापना से यह जानने के लिये हम पक्षकारों के आशय का अनुमान करार की शर्तों तथा उसकी परिस्थितियों से लगाना पड़ता है। प्रत्येक ऐसे

वाद में न्यायालय का यही जानने का कर्त्तव्य होता है कि पक्षकार संविदात्मक दायित्व उत्पन्न करना चाहते थे या नहीं। प्रायः सामाजिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में समझौतों के बारे में यह धारणा की जाती है कि पक्षकारों के दिमाग में विधिक प्रभाव नहीं थे जबकि व्यापारिक सम्बन्धों को तय करने वाले समझौतों के बारे में यह धारणा की जाती है कि पक्षकार विधिक प्रभाव चाहते थे, किन्तु फिर भी इस सम्बन्ध में, दोनों पक्षकारों का अभिप्राय देखना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पारिवारिक या सामाजिक विषयों पर विधिक रूप से बाध्य संविदा हो ही नहीं सकता। विधि को नीति केवल यह है कि पक्षकार संविदा करने का आशय रखें।

मैकगैरागर बनाम मैकगैरागर[7] विधिक प्रभाव रखने वाला पारिवारिक समझौते का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है। एक पति तथा पत्नि, जिन्होंने एक दूसरे के विरुद्ध फौजदारी मुकदमे कायम किये थे, परस्पर करार किया कि वह दोनों अपने मुकदमे वापस लेंगे और पत्नि-पति के नाम पर उधार माल नहीं खरीदेगी। यह विधि द्वारा प्रवर्तनीय निर्णीत किया गया।[8] एक अन्य वाद में[9] में एक पति-पत्नि ने अलग होते समय यह संविदा किया कि पति एक मकान का लाभदायक हित पत्नि को देगा। यह संविदा भी प्रवर्तनीय ठहराया गया।

व्यापारिक सम्बन्धों में पक्षकार एक दूसरे के विश्वास तथा इज्जत का सहारा ले सकते हैं। फिर भी व्यापारिक संविदाओं में, यदि दोनों पक्षों का अभिप्राय विधिक सम्बन्ध उत्पन्न करना नहीं है, तो वैध प्रस्ताव नहीं होगा। ऐसी स्थिति रोज एण्ड फ्रेंक कम्पनी बनाम जे. आर. काम्पटन[10] में न्यायालय के समुख आयी :

कागज के व्यापार के बारे में एक अमेरिकन तथा दो इंगलिश कम्पनी में एक संविदा हुआ। इस संविदा की एक शर्त में यह कहा गया था कि इस व्यवस्था से यथारूप विधिक सम्बन्ध स्थापित नहीं होंगे अतः यह अमेरिका तथा इंग्लैण्ड के किसी भी न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं आएगा। कुछ दिनों के पश्चात् इंग्लैण्ड की कम्पनी ने उक्त संविदा को भंग किया,

इसलिए अमेरिकन कम्पनी ने संविदा भंग का वाद न्यायालय में दायर किया। न्यायालय ने निर्णीत किया कि यह संविदा नहीं था क्योंकि पक्षकारों का आशय विधिक सम्बन्ध स्थापित करने का नहीं था। लॉर्ड एटकीक, एन. जे. ने कहा कि अगर संविदा न स्थापित करने का आशय विवक्षित रूप से बचन की प्रकृति को देखते हुए काटा जा सकता है तो स्पष्ट रूप से भी काटा जा सकता है।

इस सिद्धान्त का अनुमोदन उच्चतम न्यायालय (Supriem Court) ने अपने इस वाद, बनवारीलाल बनाम सुखदर्शन दयाल[11] में किया गया है। इस वाद के तथ्य संक्षिप्त में इस प्रकार है :

नीलामी द्वारा कुछ जमीन के टुकडे बेचे जा रहे थे और लाउउ–स्पीकर द्वारा विक्रय की शर्तों की घोषणा की जा रही थी कि एय निश्चित नाप का जमीन का टुकड़ा (प्लोट) धर्मशाला के लिये खाली रखा जायगा। बाद में वह जमीन का टुकड़ा भी बेच दिया गया। अन्य क्रेताओं ने उक्त जमीन के टुकड़ा का विकय रोकने हेतु न्यायालय में प्रार्थना की। न्यायालय ने निर्णीत किया कि लाउड–स्पीकर की घोसणा से यह तात्पर्य नहीं है कि विधिक सम्बन्ध उत्पन्न हो गये हों। अतः यह वैध प्रस्थापना न होने के कारण संविदा नहीं है। न्यायाधीश चन्द्रचूड़ (वर्तमान में मुख्य न्यायाधीश) ने कहा कि माइक्रोफोन अभी संविदा करने का ढंग नहीं बन सके हैं। लाउड–स्पीकर द्वारा किये गये वचन हल्ला–गुल्ला ही होते हैं और इस वाद में भी यह जमीन की बिक्री को प्रोत्साहन देने का एक तरीका था।

(2) **प्रस्थापना निश्चित होनी चाहिये —**

वैध संविदा के सृजन के लिये यह आवश्यक है कि प्रस्थापना निश्चित हो, ताकि संविदा के पक्षकारों के अधिकार, कर्तव्य एवं दायित्व भली-भांति अभिनिश्चित किये जा सके। धारा 29 उल्लेख करती है, यदि संविदा का अर्थ स्पष्ट नहीं है, अथवा अर्थ स्पष्ट करना संभव नहीं हो, तो इस प्रकार के संविदा शून्य हैं। उदाहरणार्थ यदि एक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति से कहे कि यदि आप एक अमुक लड़की से विवाह कर लेंगे तो मैं आपको कुछ धन दूंगा तो यह कथन प्रस्थापना

नहीं माना जा सकेगा चूंकि इसमें देय धन-राशि अभिनिश्चित नहीं हैं। एक वाद[12] में एक मकान के 85 पोण्ड प्रति वर्ष के हिसाब से 3 वर्ष के लिये पट्टा लेने की प्रस्थापना की गई कि बशर्ते "मकान का जीर्णोद्धार कराकर बैठक आधुनिक साज–सज्जा से युक्त हो जाय।" न्यायालय ने संविदा का यथोलिखित पालन कराने से इनकार किया क्योंकि उपबन्ध के वाक्यांश की अनिश्चितता प्रवर्तनीय संविदा का सृजन नहीं कर सकती। एक अन्य वाद[13] के निर्णयानुसार "कि वादी की सेवा का ध्यान रखते हुए यथोचित पारिश्रमिक दिया जायगा।" ऐसे संविदा को अनिश्चितता के कारण शून्य ठहराया गया।

इसी प्रकार "लाभों में वादी का युक्ति युक्त अंश पाना" जैसे शब्दों में वादी द्वारा ब्याज के रूप में प्राप्त की जाने वाली राशि के बारे में कोई संविदा उत्पन्न नहीं हुई।[14]

(3) प्रस्थापना की संसूचना (communicatic n of Proposal) होनी चाहिये

प्रस्थापन की संसूचना प्रतिग्रहणकर्ता (nffiree) को अवश्य दी जानी चाहिये, अन्यथा वह उसे स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि उससे अनभिज्ञ रहेगा। प्रस्थापना तभी प्रस्थापना मानी जायगी, जबकि वह प्रतिग्रहणकर्ता के ज्ञान में आ जाये। जब कोई व्यक्ति बिना प्रस्थापना के ज्ञान के ही उसकी शर्तों का पालन करता है तो वह प्रतिग्रहण (Acceptance) नहीं माना जा सकता है तथा वह संविदा का रूप धारण नहीं कर सकता है। इस नियम का एक सुप्रसिद्ध उदाहरण लालमन शुक्लाबनाम गोरीदत्त[15] नामक वाद है। इस वाद में प्रतिवादी का भतीजा घर से कहीं भाग गया था। उसने अपने मुनीम को बच्चे की तलाश में भेजा। मुनीम के जाने के पश्चात् प्रतिवादी ने कानपुर नगर में कुछ पर्चे बटवाएं जिसमें यह प्रस्ताव था कि जो भी बच्चे को खोज कर लायेगा, उसे 501 रुपये का इनाम दिया जायेगा; मुनीम बच्चे को खोज लाया और इसके बाद उसे इनाम की घोषणा वाले प्रस्ताव का ज्ञान हुआ। अतः मुनीम ने इनाम प्राप्त करने के लिये न्यायालय में वाद दायर किया, परन्तु उसका वाद असफल रहा। न्यायालय ने निर्णय देते हुए

---

12. टेलर बनाम पोटिंगन, (1855) 44 E R 128.
13. टेलर बनाम ब्रीवर, (1813) 105 E. R. 108.
14. लेस बनाम चैण्डर, (1944) I. K. B. 308.
15. The unernity was due to the opinitions expressed in Neville V. Kelly, (12 C BNS 740 32 LJ (CP)118 and Gibbons V. Proctor) (1891) 64 LT 954.

कहा कि यह मान्य संविदा नहीं था, क्योंकि प्रस्ताव मुनीम के ज्ञान में नहीं था। कोई भी पक्षकार प्रस्थापना को तब तक प्रतिग्रहण नहीं कर सकता जब तक कि वह प्रतिग्रहणकर्ता के ज्ञान में नहीं आ जाय।

न्यायाधीश बनर्जी ने सिद्धान्त इस प्रकार बताया :

"मेरे विचार में ऐसा वाद केवल संविदा के आधार पर स्थापित किया जा सकता है। संविदा स्थापित करने के लिये किसी प्रस्थापना का प्रतिग्रहण होना चाहिये और बिना प्रस्थापना के ज्ञान के प्रतिग्रहण नहीं हो सकता।"

इस वाद के समय इस विषय पर आंग्ल विधि में कुछ अनिश्चितता थी। परन्तु संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यह सिद्धान्त अपनाया जा चुका था।[16] उदाहरणार्थ, 1868 में एक जज ने कहा—"यह कैसे कहा जा सकता है किसी व्यक्ति ने किसी ऐसे विषय पर सहमति या अनुमति दे दी है जिसका कि उसे ज्ञान भी नहीं है[17] आस्ट्रेलिया के एक वाद में इस सिद्धान्त को और भी आगे बढ़ाया गया है।[18] जिसमें यह निर्णीत किया गया है कि चाहे प्रतिग्रहणकर्त्ता को किसी समय प्रस्थापना का ज्ञान रहा भी हो परन्तु प्रतिग्रहण के समय बिल्कुल भूल गया हो तो उसकी स्थिति ऐसे व्यक्ति से अच्छी नहीं हो सकती जिसे कि प्रस्थापना का भी ज्ञान न रहा हो। एक न्यायाधीश ने निम्नलिखित दिलचस्प उदाहरण दिया—

किसी ऐसे व्यक्ति को 100 पौंड देने की प्रस्थापना जो वर्ष के पहले दिन बन्दरगाह में 100 गज तैरे—मेरे विचार में ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रतिग्रहित नहीं मानी जा सकती जो दुर्घटनावश किसी जहाज से गिर गया हो या गिरा दिया गया हो और अपनी जान बचाने के लिये प्रस्थापना का कोई ज्ञान न होते हुए 100 गज तैरा हो।"[19]

जब प्रस्थापना का प्रतिग्रहण इसके ज्ञान के साथ किया गया हो तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि प्रतिग्रहणकर्त्ता के मस्तिष्क में इनाम के अलावा और भी अनेक कारण थे इस

सम्बन्ध में विलियम्स बनाम कारवडिन[20] नामक प्रसिद्ध वाद है। इस वाद में किसी व्यक्ति की हत्या कर दी गई थी। जब हत्यारे का पता नहीं लगा तो एक घोषणा की गई कि जो हत्यारे का पता बतायेगा उसे 20 पौंड इनाम के दिये जायेंगे। इसका ज्ञान एक स्त्री को था, फिर भी उस स्त्री ने इस तथ्य को 6 महीनों तक छिपाकर रखा। कुछ समय के लिये बीमार पड़ गई, ठीक होने के बाद हत्यारे को सूचना दी तथा अपने को इनाम प्राप्त करने का अधिकारी बताया। न्यायालय ने निर्णीत किया कि वह स्त्री इनाम पाने की अधिकारी है, क्योंकि उसे प्रस्थापना का ज्ञान था, अतः यह संविदापूर्ण था।

इस सम्बन्ध में एक अन्य वाद, हरभजनलाल बनाम हरचनलाल[21] का है। इस वाद के तथ्य इस प्रकार हैं।

इस वाद में, एक लड़का अपने घर से भाग गया, उसके पिता ने घोषणा की, कि जो कोई लड़के को खोज कर लायेगा या सूचना देगा, उसको 501 रुपये इनाम के दिये जायेंगे। वादी को वह लड़का धर्मशाला में मिल गया तथा वह रेलवे स्टेशन पर लाकर पुलिस को सुपुर्द कर उसके पिता को तार द्वारा लड़के पाने की सूचना भेज दी। न्यायालय ने निर्णीत किया कि वादी इनाम पाने का अधिकारी है। इस वाद में वादी ने इनाम पाने की सूचना (घोषणा) को पढ़ा था, तथा वह उसके ज्ञान में थी। अतः यह एक वैध प्रस्थापना थी।

प्रस्थापना की संसूचना तब पूर्ण हो जाती है जब प्रस्थापना इस व्यक्ति के ज्ञान में आ जाय जिसे वह किया गया है।[22]

(4) प्रस्थापना शब्दों और आचरण द्वारा की जा सकती है—

जब प्रस्थापना लिखित या मौखिक शब्दों द्वारा की जाती है तो उसे अभिव्यक्त प्रस्थापना कहते हैं। उदाहरणार्थ—'क' 'ख' आमने सामने बैठे हैं। 'क' अपनी साईकिल 400 रुपये में 'ख' को बेचने की प्रस्थापना करता है। यह मौखिक रूप से किया गया अभिव्यक्त प्रस्थापना है। इसी

प्रकार 'क' 'ख' को अपनी मोटरसाईकिल 5000 रुपये बेचने की प्रस्थापना पत्रद्वारा करता है। यह भी अभिव्यक्त प्रस्थापना है, परन्तु लिखित है।

जब प्रस्थापना शब्दों के अन्यथा आचरण (Conduct) द्वारा किया जाता है तो उसे विवक्षित प्रस्थापना (Implied Proposal or offer) कहते हैं। उदाहरणार्थ, ट्राम, रेलगाड़ी, सीटी बस का एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन को प्रस्थान करना ही ट्राम रेलगाड़ी या सीटी बस पर चढ़ने के लिये जनता से विवक्षित प्रस्थापना है। इसी प्रकार रेल्वे स्टेशन या बस स्टेशन के प्लेट फार्म पर स्वचालित भार मशीन (Weighing Machine) को खड़ाकर, ग्राहक से विवक्षित प्रस्थापना की जाती है।[23]

(5) प्रस्थापना सशर्त भी हो सकती है—

स्थापना सशर्त की जा सकती है, किन्तु प्रतिग्रहणकर्ता को उन शर्तों से तब तक बाध्य नहीं किया जा सकता जब तक कि उसे, उसकी पूर्ण सूचना न दे दी गई हो। इसका तात्पर्य यह है कि शर्तें इस प्रकार से स्पष्ट हों कि उसका ध्यान उन शर्तों पर आकर्षित हो, चाहे फिर उसने उन्हें न पढ़ा या समझा हो, फिर भी वह उनसे बाध्य होगा अर्थात जब प्रस्थापक, प्रस्थापना की शर्तों को सूचना प्रतिग्रहणकर्ता (प्रतिग्रहीता) को उचित ढंग से देता है जो साफ-साफ लिखी है तब वह यह तर्क नहीं दे सकता कि वह शर्तों से अनभिज्ञ था या उसे प्रस्थापना की शर्तों का पता नहीं था या यह कि जिस भाषा में शर्तें छपी हुई थी उस भाषा का ज्ञान नहीं था[24] या उन्हें उसे समझाया गया था उदाहरणार्थ—

'अ' ने एक जलयान कम्पनी से यात्रा करने के लिए टिकट खरीदा। टिकट के ऊपर डबलिन से वाइट हेवन छपा हुआ था तथा इसके अतिरिक्त ऐसी कोई बात नहीं छपी थी, जिससे उसका ध्यान आकृष्ट होता कि टिकट के पीछे की ओर कुछ शर्तें छपी हुई थी जिसमें से एक यह थी कि यात्रियों के सामान का नुकसान किसी कारण से होने के बावजूद भी कम्पनी उत्तरदायी नहीं होगी। 'अ' का सामान कर्मचारियों की असावधानी के कारण नष्ट हो गया। 'अ' ने क्षतिपूर्ति प्राप्त करने हेतु कम्पनी के विरुद्ध वाद दायर किया। यह निर्णित हुआ कि टिकट के पीछे छपी शर्तों से

'अ' बाध्य नहीं था, क्योंकि टिकट के ऊपर कोई चेतावनी नहीं थी कि शर्तों के लिये पीछे देखिये। कम्पनी को उत्तरदायी ठहराया गया।[25]

दूसरा उदाहरण, 'अ' ने अपना सामान रेल्वे कम्पनी के क्लॉक रूम में रखकर एक टिकट लिया। जिस पर सामने की ओर यह छपा था कि "शर्तों के लिये पीछे देखिये' तथा पीछे की ओर जो शर्तें थी उसमें से एक इस प्रकार थी कि यदि किसी यात्री का सामान दस पौंड से अधिक मूल्य का है तो उसे इसकी सूचना कम्पनी को देनी होगी अन्यथा उस सामान के खो जाने पर कम्पनी का कोई दायित्व नहीं होगा। इसी प्रकार की एक सूचना क्लॉक रूम के सामने की दीवार पर टंगी हुई थी। वादी का सामान खो गया जो 10 पौंड से अधिक मूल्य का था। 'अ' ने रेल्वे कम्पनी के विरुद्ध क्षतिपूर्ति का वाद दायर किया। निर्णित हुआ कि कम्पनी उत्तरदायी नहीं है, क्योंकि उत्तरदायित्व से सम्बन्धित शर्तें छपी जिनका ज्ञान मुख्य पृष्ठ पर कराया भी गया था। यदि वादी ने उन शर्तों पर ध्यान नहीं दिया तो इसके लिए कम्पनी उत्तरदायी नहीं है।[26]

यदि शर्तें अस्पष्ट होने के कारण पढ़ी नहीं जा सकती है तो प्रतिग्रहणकर्ता उन शर्तों से बाध्य नहीं होगा। इस सिद्धांत को सूगर बनाम लन्दन मिडलैंड एण्ड स्काटिश रेल्वे कम्पनी[27] के बाद में समझाया गया। इस बाद में वादी ने रेल्वे कम्पनी से एक टिकट खरीदा जिस पर कुछ शर्तें छपी हुई थी लेकिन तारीख की मोहर लगने के कारण पढ़ी नहीं जा सकती थी : ऐसी स्थिति में वादी शर्तों से बाध्य नहीं था।

(6) प्रस्थापना व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के विशेष वर्ग या समस्त जनता से किया जा सकता है–

प्रस्थापना किसी उल्लिखित व्यक्ति या व्यक्तियों के उल्लिखित वर्ग या सारे संसार को सम्बोधित किया जा सकता है। इसकी व्याख्या के लिए हम प्रस्थापना को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(i) विशिष्ट प्रस्ताव (Specific offer)

(ii) सामान्य प्रस्ताव (General offer)

विशिष्ट प्रस्ताव :

जो व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के विशेष वर्ग से किया जाता हैं, उसे विशिष्ट प्रस्ताव कहते है। उदाहरणार्थ–'क', अपनी पुस्तक, 'ख' को बेचने का प्रस्ताव करता है। यह एक विशिष्ट प्रस्ताव है जो एक निश्चित व्यक्ति 'ख' को किया गया है और इसे केवल 'ख' ही स्वीकार कर सकता है। अन्य उदाहरण–

'क' की पुस्तक महाविद्यालय में खो जाती है। वह महाविद्यालय के नोटिस बोर्ड पर एक सूचना लगाता है कि जो भी व्यक्ति उसकी अमुक पुस्तक पाने के बाद उसे वापस लौटायेगा तो वह उसे 10 रुपये इनाम देगा। यह एक विशिष्ट प्रस्ताव हैं, क्योंकि यह व्यक्तियों के एक विशिष्ट वर्ग (महाविद्याय के छात्रों आदि) को किया गया है।

सामान्य प्रस्ताव :

जो प्रस्ताव व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के विशेष वर्ग से न किया जाकर समस्त जनता से किया जाता है, उसे सामान्य प्रस्ताव कहते हैं। इस प्रस्ताव का तब तक कोई महत्व नहीं जब तक कि सम्पूर्ण जनता में से कोई व्यक्ति उसे स्वीकार न करले। इस सन्दर्भ में एन्सन (Anson) महोदय का यह कथन उल्लेखनीय है कि 'यह आवश्यक नहीं है कि यह प्रस्ताव किसी निश्चित व्यक्ति से ही किया जाय, लेकिन संविदा का सृजन तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि निश्चित व्यक्ति के द्वारा स्वीकार (प्रतिग्रहण) न किया जाय।"

इस प्रकार सारे संसार में कोई व्यक्ति विशेष ही होगा जो इसकी स्वीकृति दे सकता है। उदाहरणार्थ, 'क' समाचार पत्र में विज्ञापन द्वारा यह प्रस्ताव करता है कि जो व्यक्ति उसके खोये हुए लड़के का पता लगाकर घर पहुँच देगा, उसे 500 रु. इनाम दिया जायेगा। यह सारे संसार को किया गया एक सामान्य प्रस्ताव है और कोई व्यक्ति इस प्रस्ताव को जानने के काम उसके लड़के को खोज कर लाता है तो वह 'क' से इनाम पाने का अधिकारी है।

सामान्य प्रस्ताव की शर्तों का पालन मात्र ही उसकी स्वीकृति या प्रतिग्रहण होती है, इसमें स्वीकृति की सूचना प्रस्तावकर्ता को देना आवश्यक नहीं है। इस सिद्धांत का प्रमुख प्रमाण कारलिल

बनाम कारबोलिक स्मोक बाल कम्पनी[28] के वाद से मिलता है :

प्रतिवादी कम्पनी ने विज्ञापन दिया जो कि व्यक्ति उनकी "स्मोक बाल" नामक दवा का बतायी गयी विधि के अनुसार प्रयोग करने के बावजूद भी इन्फ्लुएन्जा से पीड़ित होगा तो कम्पनी उसे 100 पौंड इनाम के रूप में देगी, तथा अपनी इमानदारी दिखाने के लिए उसने 1000 पोंड एयरलायंस बैंक में जमाकर दिये हैं। वादी मिसेज कारलिल ने विज्ञापन पर विश्वास करके कम्पनी के निर्देशानुसार दवा का प्रयोग किया, लेकिन फिर भी इन्फ्लुएन्जा से पीड़ित रही। इस कारण उसने कम्पनी से इनाम के 100 पौंड प्राप्त करने के लिये न्यायालय में वाद दायर किया। न्यायालय के समक्ष कम्पनी ने अपने पक्ष में तर्क प्रस्तुत किये कि उनका संविदा करने का कोई आशय नहीं था : यह विज्ञापन केवल दवा की बिक्री बढ़ाने के लिए किया गया था ? प्रस्ताव सारे संसार से था न कि मिसेज कारलिल से। यदि यह मान भी लिया जाय कि प्रस्ताव उसने स्वीकार किया तो भी उसने स्वीकृति की संसूचना उन्हें न दी गई थी और न ही इस बात का कोई प्रमाण था कि दवा वास्तव में बतायी गई विधि के अनुसार सेवन की गई थी या नहीं : इन सब तर्कों के बावजूद भी न्यायालय ने निर्णय दिया कि ऐसे प्रस्ताव किसी भी व्यक्ति द्वारा स्वीकार किये जा सकते हैं। प्रस्ताव की शर्तो का पालन मात्र ही स्वीकृति है जिसको संसूचना देना आवश्यक नहीं है यह कहना कि एक हजार पोंड बैंक में जमाकर दिये हैं इसलिये वह नहीं कहा जा सकता कि 100 पौंड ईनाम देने का वचन केवल धुएं की टुकड़ी की तरह व्यर्थ था। अतः मिसेज कारलिल इनाम के लिये अधिकृत है।

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 8 में इस सिद्धांत को स्वीकार किया गया है। इस धारा के अनुसार, "किसी प्रस्थापना की शर्तों का पालन, या पारस्परिक वचन के लिये, जो प्रतिफल किसी प्रस्थापना के साथ पेश किया गया हो, उसका प्रतिग्रहण उस प्रस्थापना का प्रतिग्रहण है।"

कारबोलिक स्मोक बाल कम्पनी वाले वाद का सिद्धांत इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश इयरिस (Yersgg) ने हरभजनलाल बनाम हरचरणलाल[29] में अपनाया, जिसका अध्ययन

इसको अवधान में पूर्व में किया गया ।[30]

इस सिद्धांत का एक अन्य उदाहरण प्रिवी कौंसिल के एक वाद 'माल राजू लक्ष्मी वैंकटम्मा बनाम नरसिंह अप्पाराव'[31] के निर्णय में मिलता है । इस वाद में एक वादी एक धनवान हिन्दु विधवा की भतीजी थी । बचपन से ही उसका पालन पोषण चाची द्वारा किया गया । वादी की शादी एक जमींदार से हुई । चाची ने वादी को वचन दिया कि यदि वादी और उसका पति उसके साथ रहते है तो वह उन लोगों के लिये कुछ अचल सम्पत्ति खरीदेगी । तदनुसार वादी तथा उसका पति चाची के घर रहने लगे । तत्पश्चात् चाची ने कुछ अचल सम्पति अपने ही नाम से खरीदी जिससे वादी को असंतोष हुआ तथा अपने पति के साथ वह चली गई । चाची ने पत्र लिखकर यह स्पष्ट किया कि जो अचल सम्पत्ति उसने खरीदी है वह उसके लिए ही है और उसकी मृत्यु पर उन्हें मिल जायगी। इस पर वादी और उसका पति फिर से उसके पास आकर रहने लगे । चाची की मृत्यु के पश्चात्, सम्पत्ति प्राप्ति के लिए वाद दायर किया गया । न्यायालय ने निर्णय दिया कि चाची के द्वारा पत्र लिखकर आग्रह करना प्रस्थापना तथा उसके इस अनुरोध पर वादी और उसका पति वापस आकर उसके साथ रहेगा पर्याप्त प्रतिग्रहण माना गया, जैसे शर्तों का पालन ही स्वीकृति है । अतएव इस मामले में संविदा कासृजन हुआ तथा वादी सम्पत्ति प्राप्त करने की अधिकारी है ।

इस प्रकार जब प्रतिग्रहण किसी कार्य द्वारा होना हो, उदाहरणार्थ, डाक द्वारा माल भेजने का आदेश, तो नियम यह है कि प्रतिग्रहण की संसूचना आवश्यक नहीं ।[32]

जब सामान्य प्रस्ताव चल प्रकार का हो जैसा कि कारबोलिक स्मोक बाल कम्पनी के केस में था, इसका प्रतिग्रहण, कई व्यक्तियों द्वारा हो सकता है जब तक कि वह वापस न लिया जाय । किन्तु जब ऐसा प्रस्थापना किसी वस्तु की सूचना मांगे तो प्रथम सूचना मिलते ही ऐसी प्रस्थापना स्वतः बन्द हो जाती है ।

(7) प्रस्थापना के लिए निमन्त्रण प्रस्थापना के समतुल्य नहीं होता है—

प्रस्थापना के लिए निमन्त्रण प्रस्थापना के समतुल्य नहीं होता चूंकि प्रस्थापना संविदा करने के इच्छुक व्यक्ति की अन्तिम अभिव्यक्ति है। इसका उद्देश्य दूसरे व्यक्ति की अनुमति या सहमति प्राप्त करना होता है। जब कोई यह विज्ञापन दे कि उसके पास बिक्री हेतु पुस्तकें हैं या किराये हेतु मकान है तो यह कोई प्रस्थापना नहीं है। वास्तव में ऐसे विज्ञापन तो वार्तालाप आरम्भ करने के लिए किये जाते हैं या प्रस्थापना का निमन्त्रण (Invitation for Propcsal or offer) करने के लिये या सौदा करने के लिये होते हैं। जैसे दुकानदार द्वारा मूल्य-सूची प्रदर्शित करना, बिक्री की जाने वाली वस्तुओं पर मूल्य अंकित करना, निविदा (Tender) का विज्ञापन, नीलामी की सूचना रेल्वे की समय सारिणी, बैंक द्वारा दिये गये अधिकोष व्यय की तालिका (Catalogue of bank Charges) आदि।

(क) दुकानदार द्वारा मूल्य सूची प्रदर्शित करना प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण है--

ग्राहक द्वारा दुकान पर प्रदर्शित मूल्य सूची के आधार पर वस्तुओं की मांग करना प्रस्ताव के समतुल्य होता है। दुकानदार चाहे उसे स्वीकार करे या न करे। जैसे–'अ' 'ब' एक दुकानदार के पास जाता है, और मूल्य सूची के आधार पर पाँच किलो शक्कर की माँग करता है। दुकानदार यह कहकर इन्कार कर सकता है कि उसके पास 5 किलो शक्कर ही है जिसे उसने अपने एक मित्र के लिये सुरक्षित रखा है।

(ख) मूल्य सम्बन्धी पूछताछ के उत्तर में दिये गये न्यूनतम मूल्य का बिवरण प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण है--

इससे सम्बन्धित वाद हार्वे बनाम फेसी[33] है। इस बाद में वादी ने प्रतिवादी को एक तार भेजा कि "क्या आप अपनी सम्पत्ति जिसका नाम बम्पर हाल पैन है उसे बेचेंगे? कम से कम नकद (Cash) मूल्य का तार दीजिये।" प्रतिवादी ने तार द्वारा उत्तर दिया। "बम्पर हाल पैन के कम से कम नकद दाम 900 पौंड है। बादी ने फिर तार दिया और यह कहा कि हमें मंजूर है।" प्रतिवादी ने उस दाम पर बेचने से इन्कार कर दिया। इसलिये वादी ने, प्रतिबादी के विरुद्ध, न्यायालय में संविदा भंग करने का वाद दायर किया।

न्यायालय ने निर्णय देते हुये कहा कि प्रतिवादी का मूल्य बताना संविदा नहीं कहा जा सकता है, वास्तव में, वादी प्रतिवादी से दो बातों का उत्तर प्राप्त करना चाहता था।

(1) क्या प्रतिवादी अपना बम्पर हाल पैन बेचना चाहता था ?

(2) उसका कम से कम नकद मूल्य क्या है ?

प्रतिवादी ने अपने तार में पहले वाले प्रश्न, अर्थात बेचने का कोई वर्णन नहीं किया था। और केवल दूसरे प्रश्न का ही उत्तर दिया था, कि बम्पर हाल पैन का कम से कम नकद दाम 900 पौंड है, इसको न्यायालय ने प्रस्ताव न मानकर, प्रस्ताव के लिये निमन्त्रण माना। अतः यह संविदा नहीं था, इसलिये इसमें प्रतिवादी का कोई दायित्व नहीं था।

इस सिद्धांत का अनुमोदन, उच्चतम न्यायालय ने मैकफर्सन बनाम अपन्ना[34] के वाद में किया। इस वाद के तथ्य इस प्रकार हैं :

वादी ने प्रतिवादी का बंगला 6,000 रुपये में खरीदने की प्रस्थापना की। बाद में उसने प्रतिवादी के अभिकर्ता से पूछा कि उसकी प्रस्थापना मंजूर हुई या नहीं और यदि वह कुछ और अधिक दाम चाहते हों तो वह भी अगर उचित हो तो मान लिये जाएंगे। प्रतिवादी के अभिकर्त्ता ने लिखा कि इसका मूल्य 10,000 रुपये से कम नहीं है। वादी इस मूल्य पर खरीदने को तैयार हो गया, किन्तु प्रतिवादी ने बेचने से इन्कार कर दिया। अतः वादी ने प्रतिवादी से बंगला प्राप्त करने के लिये वाद दायर किया। उसका वाद असफल रहा, क्योंकि न्यायालय के विचार में प्रतिवादी ने यह कहकर कि वह 10,000 रुपये से कम नहीं लेगा उस मूल्य पर प्रस्थापना को निमन्त्रण किया गया था।

(ग) नीलाम करने की घोषणा (Announcement to hold auction) प्रस्थापना के लिये निमन्त्रण है--

विक्रेता या नीलामकर्त्ता की घोषणा कि यथोलिखित सामान अमुक दिन नीलाम किया जायेगा, उस नीलामी का प्रस्ताव नहीं है। नीलामकर्त्ता प्रस्थापना आमन्त्रित करते हैं और बोली लगाने वाला प्रस्थापक होता है। नीलाम के विज्ञापन में निर्धारित स्थान पर आने वाले व्यक्तियों के

प्रति नीलामकर्त्ता का कोई दायित्व नहीं होता है। इस सिद्धांत का उदाहरण हेरिस बनाम निकसंन[35] का वाद है, इस वाद में नीलामकर्त्ता निकसंन ने समाचार पत्रों में विज्ञापन दिया कि यथोलिखित (Specified) वस्तुग्रों की नीलामी, ग्रमुक स्थान व समय पर होगी। हेरिस जो उसमें से कुछ वस्तुग्रों को खरीदना चाहता था, उस निर्धारित स्थान पर पहुँचा। तत्पश्चात उसे वहां यह ज्ञात हुग्रा कि नीलाम स्थगित हो गया है। हेरिस ने ग्राने जाने का खर्च एवं ग्रसुविधा के लिये क्षतिपूर्ति का वाद दायर किया। न्यायालय ने निर्णीत किया कि वस्तुग्रों की बिक्री एवं नीलाम का विज्ञापन प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण है। ग्रतः विज्ञापनकर्त्ता उत्तरदायी नहीं होगा।

(घ) रेल्वे की समय-सारिणी (Railway Time Table) प्रस्थापना के लिए निमन्त्रण होती है—

रेल्वे की तरह से प्रकाशित समय सारिणी प्रस्थापना के लिये निमन्त्रण माना जाता है, क्योंकि यदि रेल्वे समय-सारिणी में लिखे गये समय पर ट्रेन नहीं ग्राती तो यात्री रेल्वे कम्पनी पर किसी प्रकार का वाद दायर नहीं कर सकते।

(ङ) निविदा (Tender) की सूचना प्रस्थापना के लिए निमन्त्रण होता है—

जो व्यक्ति माल के क्रय या विक्रय के लिये निविदा निमन्त्रित करता है वह प्रस्थापना नहीं करता है। इसमें वह व्यक्ति प्रस्थापना करता है जो निविदा (Tender) प्रस्तुत करता है ग्रोर उसे वह व्यक्ति स्वीकृत या ग्रस्वीकृत करता है जो निविदा निमन्त्रित करता है। इस प्रकार जब कोई निविदा निश्चित मूल्य पर निश्चित मात्रा में समम-समय पर माल की पूर्ति के लिये की जाती है तब उससे निविदा करने वाले व्यक्ति की ग्रोर से लगातार प्रस्थापना की शृंखला (सिरीज) उत्पन्न हो जाती है जिन्हें दूसरा पक्षकार निविदा की शर्तों के ग्रनुसार संविदा में परिवर्तित करने के लिए स्वतन्त्र होता है, प्रत्येक क्रमिक ग्रादेश ग्रादिष्ट मात्रा के सम्बन्ध में प्रस्ताव की स्वीकृति होगा, किन्तु कोई ग्रादेश किये जाने के पूर्व निविदा रद्द की जा सकती है या उसे वापस लिया जा सकता है।

इसी प्रकार दुकान के प्रदर्शन कक्ष (Show Room) में मूल्य अंकित करके वस्तुग्रों को रखना तथा बैंक द्वारा दिये गये ग्रधिकोष व्यय की तालिका एवं विवरण पत्रिका (Prospectus) भी प्रस्थापना नहीं है ग्रपितु प्रस्थापना के लिये निमन्त्रण होते हैं।

स्थायी या सतत् प्रस्ताव (Standing of Continuing) :

जब सार्वजनिक संस्थानों, सरकारी अथवा अर्द्ध सरकारी प्रतिष्ठानों, बड़ी-बड़ी कम्पनियों एवं आम जनता को निश्चित अवधि के लिये अधिक मात्रा में वस्तुओं की जरूरत पड़ती है तो निविदा आमन्त्रित की जाती है। उसके प्रत्युत्तर में दी गई सूचना प्रस्ताव (प्रस्थापना) होती है जिसका प्रतिग्रहण आदेश (Order) देकर किया जाता है। ऐसा प्रस्ताव निश्चित अवधि के लिये मान्य होता है। आवश्यकता के अनुसार जैसे-जैसे आदेश दिया जाता है। तभी स्वीकृति होती है। इस प्रकार प्रत्येक आदेश स्वीकृति (प्रतिग्रहण) माना जाता है और प्रस्ताव खुला रहता है ऐसे प्रस्ताव की शृंखला को स्थायी या खुला (Open) प्रस्ताव कहते हैं। उदाहरणार्थ, ग्रेट नादर्न रेल्वे कं. बनाम विथहाम[36] का वाद देखा जा सकता है। इस वाद में वादी कम्पनी ने, 12 महीने तक कुछ वस्तुओं की आपूर्ति के लिये निविदा आमंत्रित किया। प्रतिवादी ने निश्चित अवधि तक निश्चित मूल्य पर, स्टोरकीपर के आदेश के अनुसार वस्तुओं की आपूर्ति करने की निविदा किया। इसको कम्पनी ने स्वीकार कर लिया। प्रतिवादी ने वादी के कुछ आदेशों का निष्पादन भी किया, किन्तु शेष आदेशों को निष्पादन करने से इन्कार किया। निर्णीत हुआ कि वादी कं० क्रय करने के लिये बाध्य नहीं,किन्तु जितनी मांग वादी कर चुका था, उसके प्रस्ताव को वापस नहीं ले सकता। परन्तु मांगों के अलावा प्रतिवादी प्रस्ताव को वापस ले सकता है।

इसका अन्य उदाहरण बंगाल कोल कम्पनी बनाम होमीवाडिया एण्ड कम्पनी[37] का वाद है। इस वाद में प्रतिवादी ने एक वर्ष के लिये निश्चित दर से समय-समय पर उसकी आवश्यकतानुसार मांग करने पर कोयला देने का करार किया, वादी के आदेश के अनुसार उसने कोयला भी सप्लाई किया, किन्तु अभी एक वर्ष पूरा नहीं हुआ शेष आदेश में कोयला के सप्लाई करने से मना किया। वादी ने संविदा-भंग का वाद दायर किया। न्यायालय ने निर्णीत किया कि संविदा सृजन हुआ ही नहीं था। ऐसे स्थायी या सतत् (Standing or Continuing) प्रस्ताव में आदेश देने के पश्चात ही वचन का निर्माण होता है तथा शेष अवधि का प्रत्येक आदेश संविदा का सृजन करता है। अत: प्रतिवादी को आदेश देने के पूर्व प्रस्ताव को वापस लेने का अधिकार है।